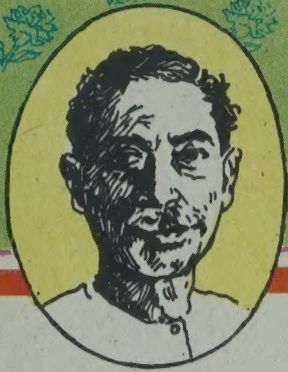
सरल प्रेमचन्द



नमक का दरोगा



नमक का दारोगा

प्रेमचन्द

समाज शिक्षा प्रकाशन

मूल्य : दस रुपये (10.00)

संस्करण : 1989 © प्रकाशक
समाज शिक्षा प्रकाशन, 2702, लोथियान रोड, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित
NAMAK KA DAROGA (Short Stories) by Premchand

क्रम



पंच-परमेश्वर

जुम्मन शेख और चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे, तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे, और अलगू जब कभी बाहर जाते, तो जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता; केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूलमंत्र भी यही है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ, जब दोनों मित्र बालक ही थे; और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमराती, उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरुजी की बहुत सेवा की थी, खूब रकाबियां मांजी, खूब प्याले धोए। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था, क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घंटे तक किताबों से अलग कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे। उन्हें शिक्षा की अपेक्षा गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वह कहते थे कि विद्या पढ़ने से नहीं आती; जो कुछ होता है, गुरु के आशीर्वाद से। बस, गुरु जी की कृपा-दृष्टि चाहिए। अतएव यदि अलगू पर जुमराती शेख के आशीर्वाद

अथवा सत्संग का कुछ फल न हुआ, तो यह मानकर संतोष कर लेगा कि विद्योपार्जन में मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, विद्या उसके भाग्य में न थी, तो कैसे आती ?

मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वाद के कायल न थे। उन्हें अपने सोटे पर अधिक भरोसा था, और उसी सोटे के प्रताप से आज आस-पास के गांवों में जुम्मन की पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रेहननामे या बैनामे पर कचहरी का मुहर्रिर भी कलम न उठा सकता था। हल्के का डाकिया, कांस्टेबिल और तहसील का चपरासी—सब उनकी कृपा की आकांक्षा रखते थे। अतएव अलगू का मान उनके धन के कारण था; तो जुम्मन शेख़ अपनी अनमोल विद्या से ही सबके आदरपात्र बने थे।

2

जुम्मन शेख़ की एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उसके पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी; परंतु उसके निकट संबंधियों में कोई न था। जुम्मन ने लंबे-चौड़े वादे करके यह मिलकियत अपने नाम लिखवा ली थी। जब तक दानपत्र की रजिस्ट्री न हुई थी, तब तक खालाजान का खूब आदर-सत्कार किया गया। उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलवे-पुलाव की वर्षा-सी की गयी; पर रजिस्ट्री की मोहर ने इन खातिर-दारियों पर भी मानो मुहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज, तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख़ भी निठुर हो गये। अब

बेचारी खालाजान को प्रायः नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थीं।

बुढ़िया न जाने कब तक जिएगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानो मोल ले लिया है! बघारी दाल के बिना रोटियां नहीं उतरतीं! जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके, उतने से तो अब तक गांव मोल ले लेते।

कुछ दिन खालाजान ने सुना और सहा; पर जब न सहा गया तब जुम्मन से शिकायत की। जुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी—गृहस्वामी—के प्रबंध में दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अंत में एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा—बेटा! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपए दे दिया करो, मैं अपना पका-खा लूँगी।

जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया--रुपए क्या यहां फलते हैं?

खाला ने नम्रता से कहा—मुझे कुछ रूखा-सूखा चाहिए भी कि नहीं?

जुम्मन ने गंभीर स्वर से जवाब दिया—तो कोई यह थोड़े ही समझा था कि तुम मौत से लड़कर आई हो?

खाला बिगड़ गयीं, उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। जुम्मन हंसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाल की तरफ़ जाते देखकर मन-ही-मन हंसता है। वह बोले—हाँ, ज़रूर पंचायत करो। फैसला हो जाए। मुझे भी यह रात-दिन की खटखट पसंद नहीं।

पंचायत में किसकी जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी संदेह न था। आसपास के गांवों में ऐसा कौन था, जो उसके अनुग्रहों का ऋणी न हो; ऐसा कौन था, जो उसको शत्रु बनाने का साहस कर सके ? किसमें इतना बल था, जो उसका सामना कर सके ? आसपास के फरिश्ते तो पंचायत करने आवेंगे ही नहीं।

3

इसके बाद कई दिन तक बूढ़ी खाला हाथ में एक लकड़ी लिए आसपास के गांवों में दौड़ती रहीं। कमर झुककर कमान हो गयी थी। एक-एक पग चलना दूभर था; मगर बात आ पड़ी थी। उसका निर्णय करना ज़रूरी था।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा, जिसके सामने बुढ़िया ने दुःख के आंसू न बहाये हों। किसी ने तो यों ही ऊपरी मन से हूं-हां करके टाल दिया, और किसी ने इस अन्याय पर जमाने को गालियां दीं ! कहा—कब्र में पांव लटके हुए हैं, आज मरे, कल दूसरा दिन; पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए ? रोटी खाओ और अल्लाह का नाम लो। तुम्हें अब खेती-बारी से क्या काम है ? कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हें हास्य-रस के रसास्वादन का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुंह, सन-के-से बाल इतनी सामग्री एकत्र हो, तब हंसी क्यों न आवे ? ऐसे न्याय-प्रिय, दयालु, दीन-वत्सल पुरुष बहुत कम थे, जिन्होंने उस अबला के दुखड़े को गौर से सुना हो और उसको सांत्वना

दी हो। चारों ओर से घूम-घामकर बेचारी अलगू चौधरी के पास आयी। लाठी पटक दी और दम लेकर बोली–बेटा, तुम भी दम-भर के लिए मेरी पंचायत में चले आना।

अलगू–मुझे बुलाकर क्या करोगी ? कई गांव के आदमी तो आवेंगे ही।

खाला–अपनी विपद तो सबके आगे रो आयी। अब आने न आने का अख्तियार उनको है।

अलगू–यों आने को आ जाऊंगा; मगर पंचायत में मुंह न खोलूंगा।

खाला–क्यों बेटा ?

अलगू–अब इसका क्या जवाब दूं ? अपनी खुशी। जुम्मन मेरा पुराना मित्र है। उससे बिगाड़ नहीं कर सकता।

खाला–बेटा, क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे ?

हमारे सोए हुए धर्म-ज्ञान की सारी संपति लुट जाये, तो उसे खबर नहीं होती, परंतु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का कोई उत्तर न दे सका, पर उसके हृदय में ये शब्द गूंज रहे थे–

क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे ?

4

संध्या-समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। शेख़ जुम्मन ने पहले से ही फर्श ब्रिछा रखा था। उन्होंने पान, इलायची,

हुक्के-तंबाकू आदि का प्रबंध भी किया था। हां, वह स्वयं अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ ज़रा दूर पर बैठे हुए थे। जब पंचायत से कोई आ जाता था, तब दबे हुए सलाम से उसका स्वागत करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरवयुक्त पंचायत पेड़ों पर बैठी, तब यहां भी पंचायत शुरू हुई। फर्श की एक-एक अंगुल ज़मीन भर गयी; पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमंत्रित महाशयों में से केवल वे ही लोग पधारे थे, जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असंभव था कि सुलगते हुए उपलों से अधिक धुआं निकलता था या चिलम के दमों से। लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली-गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ़ कोलाहल मच रहा था। गांव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझकर झुंड-के-झुंड जमा हो गए थे।

पंच लोग बैठ गये, तो बूढ़ी खाला ने उनसे विनती की–

'पंचो, आज तीन साल हुए, मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजे जुम्मन के नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे ता-हयात रोटी-कपड़ा देना कुबूल किया। साल-भर तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटा! पर अब रात-दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट की रोटी मिलती है, न तन का कपड़ा। बेकस बेवा हूं। कचहरी दरबार नहीं कर सकती। तुम्हारे सिवा और किसको अपना दुख सुनाऊं? तुम लोग जो राह निकाल दो, उसी राह पर चलूं। अगर मुझमें कोई ऐब देखो, तो

मेरे मुंह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन में बुराई देखो, तो उसे समझाओ, क्यों एक बेकस की आह लेता है! मैं पंचों का हुक्म सिर-माथे पर चढ़ाऊंगी।'

रामधन मिश्र, जिनके कई असामियों को जुम्मन ने अपने गांव में बसा लिया था, बोले—जुम्मन मियां, किसे पंच बदते हो? अभी से इसका निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पंच कहेंगे, वही मानना पड़ेगा।

जुम्मन को इस समय सदस्यों में विशेषकर वे ही लोग दीख पड़े, जिनसे किसी-न-किसी कारण उनका वैमनस्य था। जुम्मन बोले—पंचों का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। खाला-जान जिसे चाहें, उसे बदें। मुझे कोई उज्र नहीं।

खाला ने चिल्लाकर कहा—अरे अल्लाह के बंदे! पंचों का नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो।

जुम्मन ने क्रोध से कहा—अब इस वक्त मेरा मुंह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो, पंच बदो।

खालाजान जुम्मन के आक्षेप को समझ गयीं, वह बोलीं—बेटा, खुदा से डरो। पंच न किसी के दोस्त होते हैं, न किसी के दुश्मन। कैसी बात कहते हो! और तुम्हारा किसी पर विश्वास न हो, तो जाने दो; अलगू चौधरी को तो मानते हो? लो, मैं उन्हीं को सरपंच बदती हूं।

जुम्मन शेख़ आनंद से फूल उठे, परंतु भावों को छिपा-कर बोले—अलगू ही सही, मेरे लिए जैसे रामधन वैसे अलगू।

अलगू इस झमेले में फंसना नहीं चाहते थे। वे कन्नी

काटने लगे। बोले—खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी दोस्ती है।

खाला ने गंभीर स्वर में कहा—'बेटा, दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुंह से जो बात निकलती है, वह खुदा की तरफ से निकलती है।'

अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मन के दूसरे बिरोधियों ने बुढ़िया को मन में बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले—शेख़ जुम्मन ! हम और तुम पुराने दोस्त हैं ! जब काम पड़ा, तुमने हमारी मदद की है और हम भी जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी सेवा करते रहे हैं; मगर इस समय तुम और बूढ़ी खाला, दोनों हमारी निगाह में बराबर हो। तुमको पंचों से जो कुछ अर्ज करनी हो, करो।

जुम्मन को पूरा विश्वास था कि अब बाजी मेरी है। अलगू यह सब दिखावे की बातें कर रहा है। अतएव शांत-चित्त होकर बोले—पंचों, तीन साल हुए खालाजान ने अपनी जायदाद मेरे नाम हिब्बा कर दी थी। मैंने उन्हें ता-हयात खाना-कपड़ा देना कुबूल किया था। खुदा गवाह है, आज तक मैंने खालाजान को कोई तकलीफ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी मां के समान समझता हूं। उनकी खिदमत करना मेरा फ़र्ज है; मगर औरतों में ज़रा अनबन रहती है, इसमें मेरा क्या बस है ? खालाजान मुझसे माहवार खर्च अलग मांगती हैं। जायदाद जितनी है; वह पंचों से छिपी नहीं। उससे इतना मुनाफा नहीं होता है कि माहवार खर्च दे सकूं। इसके अलावा हिब्बानामे में माहवार खर्च का कोई ज़िक्र

नहीं। आइंदा पंचों का अख्तियार है, जो फैसला चाहें, करें।

अलगू चौधरी को हमेशा कचहरी से काम पड़ता था। अतएव वह पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मन से जिरह शुरू की। एक-एक प्रश्न जुम्मन के हृदय पर हथौड़े की चोट की तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इन प्रश्नों पर मुग्ध हो जाते थे। जुम्मन चकित थे कि अलगू को क्या हो गया। अभी यह अलगू मेरे साथ बैठा हुआ कैसी-कैसी बातें कर रहा था। इतनी ही देर में ऐसी कायापलट हो गयी कि मेरी जड़ खोदने पर तुला हुआ है। न मालूम कब की कसर यह निकाल रहा है? क्या इतने दिनों की दोस्ती कुछ भी काम न आवेगी?

जुम्मन शेख़ तो इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया—

जुम्मन शेख़! पंचों ने इस मामले पर विचार किया। उन्हें यह नीति संगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाए। हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो, तो हिब्बानामा रद्द समझा जाए।

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आ गये। जो अपना मित्र हो, वह शत्रु का व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे, इसे समय के हेर-फेर के सिवा और क्या कहें? जिस पर पूरा भरोसा था, उसने समय पड़ने पर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरों पर झूठे-सच्चे मित्रों की परीक्षा की जाती

है ! यही कलियुग की दोस्ती है। अगर लोग ऐसे कपटी-धोखेबाज न होते, तो देश में आपत्तियों का प्रकोप क्यों होता ? यह हैजा-प्लेग आदि व्याधियां दुष्कर्मों के ही दंड हैं।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीति-परायणता की प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे–इसका नाम पंचायत है ! दूध-का-दूध और पानी-का-पानी कर दिया। दोस्ती, दोस्ती की जगह है, किंतु धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पर पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो वह कब की रसातल को चली जाती।

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ हिला दी। अब वे साथ-साथ बातें करते नहीं दिखाई देते। इतना पुराना मित्रता-रूपी वृक्ष सत्य का एक झोंका भी न सह सका। सचमुच वह बालू की ही ज़मीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक-दूसरे की आवभगत ज़्यादा करने लगे। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह, जैसे तलवार से ढाल मिलती है।

जुम्मन के चित्त में मित्र की कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घड़ी यही चिंता रहती थी कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

5

अच्छे कामों की सिद्धि में बड़ी देर लगती है; पर बुरे कामों की सिद्धि में यह बात नहीं होती; जुम्मन को भी बदला

लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी गोई मोल लाये थे। बैल पछाहीं जाति के सुंदर, बड़े-बड़े सींगोंवाले थे। महीनों तक आसपास के गांव के लोग दर्शन करते रहे। दैव-योग से जुम्मन की पंचायत के एक महीने के बाद इस जोड़ी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तों से कहा—यह दग़ा-बाजी की सज़ा है। इंसान सब्र भले ही कर जाये, पर खुदा नेक-बद सब देखता है। अलगू को संदेह हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन पर ही इस दुर्घटना का दोषारोपण किया। उसने कहा—जुम्मन ने कुछ कर-करा दिया है। चौधराइन और करीमन में इस विषय पर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ। दोनों देवियों ने शब्द-बाहुल्य की नदी बहा दी। व्यंग्य, वक्रोक्ति, अन्योक्ति और उपमा आदि अलंकारों में बातें हुईं। जुम्मन ने किसी तरह शांति, स्थापित की। उन्होंने अपनी पत्नी को डांट-डपटकर समझा दिया। वह उसे उस रणभूमि से हटा भी ले गये। उधर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्क-पूर्ण सोटे से लिया।

अब अकेला बैल किस काम का? उसका जोड़ बहुत ढूंढ़ा गया, पर न मिला। निदान यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिए। गांव में एक समझू साहु थे, वह इक्का-गाड़ी हांकते थे। गांव से गुड़-घी लादकर मंडी ले जाते, मंडी से तेल, नमक भर लाते, और गांव में बेचते। इस बैल पर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे तो दिन-भर में बेखटके तीन खेप हों। आजकल तो एक ही

खेप के लाले पड़े रहते हैं। बैल देखा, गाड़ी में दौड़ाया, बाल-भौंरी की पहचान कराई, मोल-तोल किया और उसे लाकर द्वार पर बांध ही दिया। एक महीने में दाम चुकाने का वादा ठहरा। चौधरी को भी गरज़ थी ही, घाटे की परवा न की।

समझू साहु ने नया बैल पाया, तो लगे उसे रगेदने। वह दिन में तीन-तीन; चार-चार खेपें करने लगे। न चारे की फिक्र थी, न पानी की, बस खेपों से काम था। मंडी ले गए, वहां कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न ले पाया था कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरी के घर था तो चैन की बंशी बजती थी। बैल-राम छठे-छमाहे कभी बहली में जोते जाते थे। खूब उछलते कूदते और कोसों तक दौड़ते चले जाते थे। वहां बैलराम का रातिब था, साफ़ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूसे के साथ खली, और यही नहीं, कभी-कभी घी का स्वाद चखने को मिल जाता था। शाम-सबेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सहलाता था। कहां वह सुख-चैन, कहां यह आठों पहर की खपत ! महीने-भर में वह पिस-सा गया। इक्के का जुआ देखते ही उसका लहू सूख जाता था। एक-एक पग चलना दूभर था। हड्डियां निकल आई थीं; पर था वह पानीदार, मार की बरदाश्त न थी।

एक दिन चौथी खेप में साहु जी ने दूना बोझ लादा। दिन-भर का थका जानवर, पैर न उठते थे। पर साहु जी कोड़े फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़-कर चला कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि ज़रा दम ले लूं, पर

साहु जी को जल्द पहुंचने की फिक्र थी; अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयता से फटकारे। बैल ने एक बार फिर ज़ोर लगाया; पर अबकी बार शक्ति ने जवाब दे दिया। वह धरती पर गिर पड़ा, और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहु जी ने बहुत पीटा, टांग पकड़कर खींचा, नथनों में लकड़ी ठूंस दी; पर कहीं मृतक भी उठ सकता है ? जब साहु जी को कुछ शक हुआ। उन्होंने बैल को गौर से देखा, खोलकर अलग किया, और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुंचे। बहुत चीखे-चिल्लाए; पर देहात का रास्ता बच्चों की आंख की तरह सांझ होते ही बंद हो जाता है। कोई नज़र न आया। आस-पास कोई गांव न था। मारे क्रोध के उन्होंने मरे हुए बैल पर और दुर्रे लगाए और कोसने लगे– अभागे ! तुझे मरना ही था, तो घर पहुंचकर मरता ! ससुरा बीच रास्ते ही में मर रहा ! अब गाड़ी कौन खींचे ? इस तरह साहु जी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड़ और कई पीपे घी उन्होंने बेचे थे, दो-ढाई सौ रुपए कमर में बंधे थे। इसके सिवा गाड़ी पर कई बोरे नमक के थे; अतएव छोड़-कर जा भी न सकते थे। लाचार बेचारे गाड़ी पर ही लेट गए। वहीं रतजगा करने की ठान ली। चिलम पी गया। फिर हुक्का पिया। इस तरह साहु जी आधी रात तक नींद को बहलाते रहे। अपनी जान में तो वह जागते रहे; पर पौ फटते ही जो नींद टूटी और कमर पर हाथ रखा, तो थैली गायब ! घबराकर इधर-उधर देखा, तो कई कनस्तर तेल भी नदारत ! अफसोस में बेचारे ने सिर पीट लिया और पछाड़ खाने लगा। प्रातः काल रोते-बिलखते घर पहुंचे।

सहुआइन ने जब यह बुरी सुनावनी सुनी, तब पहले तो रोई, फिर अलगू चौधरी को गालियां देने लगी—निगोड़े ने ऐसा कुलच्छनी बैल दिया कि जन्म-भर की कमाई लुट गई।

इस घटना को हुए कई महीने बीत गए। अलगू जब अपने बैल के दाम मांगते तब साहु और सहुआइन, दोनों ही झल्लाए हुए कुत्ते की तरह चढ़ बैठते, और अंड-बंड बकने लगते--वाह ! यहां तो सारे जन्म की कमाई लुट गई, सत्यानाश हो गया, इन्हें दामों की पड़ी है। मुर्दा बैल दिया था, उस पर दाम मांगने चले हैं ! आंखों में धूल झोंक दी, सत्यानाशी बैल गले बांध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया है ! हम भी बनिये के बच्चे हैं, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे। पहले जाकर किसी गड़हे में मुंह धो आओ, तब दाम लेना। न जी मानता हो, तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना-भर के बदले दो महीना जोत लो। और क्या लोगे ?

चौधरी के अशुभचिंतकों की कमी न थी। ऐसे अवसरों पर वे भी एकत्र हो जाते और साहु जी के बर्राने की पुष्टि करते। परंतु डेढ़ सौ रुपए से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वह भी गरम पड़े। साहु जी बिगड़कर लाठी ढूंढ़ने घर चले गए। अब सहुआइन ने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथापाई की नौबत आ पहुंची। साहुआइन ने घर में घुसकर किवाड़ बंद कर लिए। शोरगुल सुनकर गांव के भलेमानस जमा हो गए। उन्होंने दोनों को समझाया। साहु जी को दिलासा देकर घर से निकाला। वह परामर्श देने लगे कि इस तरह से काम न चलेगा। पंचायत कर लो। जो कुछ तय हो जाए, उसे स्वीकार कर लो। साहु

जी राजी हो गए । अलगू ने भी हामी भर ली ।

पंचायत की तैयारियां होने लगीं । दोनों पक्षों ने अपने-अपने दल बनाने शुरू किए । इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे पंचायत बैठी । वही संध्या का समय था । खेतों में कौए पंचायत कर रहे थे । विवादग्रस्त विषय था यह कि मटर की फलियों पर उनका कोई स्वत्व है या नहीं; और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाए, तब तक वे रखवाले की पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे । पेड़ की डालियों पर बैठी शुक-मंडली में यह प्रश्न छिपा हुआ था कि मनुष्यों को उन्हें बेमुरौवत कहने का क्या अधिकार है, जब उन्हें स्वयं अपने मित्रों से दगा करने में भी संकोच नहीं होता ।

पंचायत बैठ गई, तो रामधन मिश्र ने कहा—अब देरी क्या है ? पंचों का चुनाव हो जाना चाहिए । बोलो चौधरी; किस-किस को पंच बदते हो ।

अलगू ने दीन भाव से कहा—समझू साहु ही चुन लें ।

समझू खड़े हुए और कड़ककर बोले—मेरी ओर से जुम्मन शेख़ ।

जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू चौधरी का कलेजा धक्-धक् करने लगा, मानो किसी ने अचानक थप्पड़ मार दिया हो । रामधन अलगू के मित्र थे । वह बात को ताड़ गए । पूछा—क्यों चौधरी तुम्हें कोई उज्र तो नहीं ।

चौधरी ने निराश होकर कहा—नहीं, मुझे क्या उज्र होगा ?

अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधारक होता है। जब हम राह भूलकर भटकने लगते हैं तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक बन जाता है।

पत्र-संपादक अपनी शांति कुटी में बैठा हुआ कितनी धृष्ठता और स्वतंत्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मंत्रि-मंडल पर आक्रमण करता है; परंतु ऐसे अवसर आते हैं, जब स्वयं मंत्रिमंडल में सम्मिलित होता है। मंडल के भवन में पग धरते ही उनकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचार-शील, कितनी न्याय-परायण हो जाती है। इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है। नवयुवक युवावस्था में कितना उदंड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिंतित रहते हैं! वे उसे कुल-कलंक समझते हैं; परंतु थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही वह अव्यवस्थित-चित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शांतचित्त हो जाता है, यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

जुम्मन शेख़ के मन में भी सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूं। मेरे मुंह से इस समय जो कुछ निकलेगा, वह देववाणी के सदृश है– और देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्य से जौ-भर भी टलना उचित नहीं!

पंचों ने दोनों पक्षों से सवाल-जवाब करने शुरू किए। बहुत देर तक दोनों दल अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते

रहे इस विषय में तो सब सहमत थे कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिए। परंतु दो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैल के मर जाने से समझू को हानि हुई। इसके प्रतिकूल दो सभ्य मूल के अतिरिक्त समझू को दंड भी देना चाहते थे, जिससे फिर किसी को पशुओं के साथ ऐसी निर्दयता करने का साहस न हो। अंत में जुम्मन ने फैसला सुनाया–

अलगू चौधरी और समझू साहु। पंचों ने तुम्हारे मामले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू को उचित है कि बैल का पूरा दाम दे। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिए जाते,तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई है कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम लिया गया और उसके दाने-चारे का कोई अच्छा प्रबंध न किया गया।

रामधन मिश्र बोले–समझू ने बैल को जान-बूझकर मारा है, अतएव उससे दंड लेना चाहिए।

जुम्मन बोले–यह दूसरा सवाल है! हमको इससे कोई मतलब नहीं!

झगड़ू साहु ने कहा–समझू के साथ में कुछ रियायत होनी चाहिए!

जुम्मन बोले–यह अलगू चौधरी की इच्छा पर निर्भर है। यह रियायत करें, तो उनकी भलमनसी।

अलगू चौधरी फूले न समाए। उठ खड़े हुए और ज़ोर से बोले–पंच परमेश्वर की जय!

इसके साथ ही चारों ओर से प्रतिध्वनि हुई–पंच-

परमेश्वर की जय !

प्रत्येक मनुष्य जुम्मन की नीति को सराहता था–इसे कहते हैं न्याय ! यह मनुष्य का काम नहीं, पंच में परमेश्वर वास करते हैं, यह उन्हीं की महिमा है। पंच के सामने खोटे को कौन खरा कह सकता है ?

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आए और उनके गले लिपटकर बोले–भैया, जब से तुमने मेरी पंचायत की तब से मैं तुम्हारा प्राण-घातक शत्रु बन गया था; पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया है कि पंच की जुबान से खुदा बोलता है। अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनों के दिलों का मैल धुल गया। मित्रता की मुरझाई लता फिर हरी हो गयी।

नमक का दारोगा

जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वरप्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी-छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल-प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ-बारह थे। पटवारीगिरी का सर्व-सम्मानित पद छोड़-छोड़कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था। यह वह समय था जब अंगरेज़ी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएं और शृंगार रस के काव्य पढ़-कर फ़ारसी दां लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुंशी वंशीधर भी जुलेखा की विरह-कथा समाप्त करके मजनू और फरहाद के प्रेम-वृत्तांत को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्त्व की बातें समझते हुए रोजगार की खोज में निकले। उनके पिता एक अनुभवी पुरुष थे। समझाने लगे, बेटा! घर की दुर्दशा देख रहे हो। ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। लड़कियां हैं, वह घास-फूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं। मैं कगारे

पर का वृक्ष हो रहा हूं, न मालूम कब गिर पड़ूं। अब तुम्हीं घर के मालिक-मुख्तार हो। नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मजार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूंढ़ना जहां कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चांद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते-घटते लुप्त हो जाता है! ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से उसकी बरकत होती है, तुम स्वयं विद्वान् हो, तुम्हें क्या समझाऊं। इस विषय में विवेक की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर देखो, उसके उपरांत जो उचित समझो, करो। गरजवाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ-ही-लाभ है। लेकिन बेगरज को दांव पर पाना ज़रा कठिन है। इन बातों को निगाह में बांध लो। वह मेरी जन्म-भर की कमाई है।

इस उपदेश के बाद पिता जी ने आशीर्वाद दिया। वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथ-प्रदर्शक और आत्मावलंबन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुन से चले थे, जाते-ही-जाते नमक विभाग के दारोगा पद पर प्रतिष्ठित हो गये। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो ठिकाना ही न था। वृद्ध मुंशी जी को सुख-संवाद मिला तो फूले न समाए।

महाजन कुछ नरम पड़े, कलवार की आशालता लहलहाई। पड़ोसियों के हृदय में शूल उठने लगे।

2

जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त थे। मुंशी वंशीधर को यहां आये अभी छह महीने से अधिक न हुए थे लेकिन इस थोड़े समय में ही उन्होंने कार्य कुशलता और उत्तम आचार से अफसरों को मोहित कर लिया था। अफसर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ्तर से एक मील पूर्व की ओर जमुना बहती थी, उस पर नावों का एक पुल बना हुआ था दारोगा जी किवाड़ बंद किये मीठी नींद से सो रहे थे। अचानक आंख खुली तो नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनायी दिया। उठ बैठे। इतनी रात गये गाड़ियां क्यों नदी के पार जाती हैं? अवश्य कुछ-न-कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वरदी पहनी, तमंचा जेब में रखा और बात-की-बात में घोड़ा बढ़ाये हुए पुल पर आ पहुंचे। गाड़ियों की एक लंबी कतार पुल के पार जाती देखी। डांटकर पूछा, किसकी गाड़ियां हैं।

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में काना-फूसी हुई तब आगेवाले ने कहा—पंडित अलोपीदीन की।

"कौन पंडित अलोपीदीन?"

"दातागंज के।"

मुंशी वंशीधर चौंके। पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपए का लेन-देन करते थे, इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लंबा-चौड़ा था। बड़े चलते-पुरजे आदमी थे। अंगरेज़ी अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।

मुंशी जी ने पूछा, गाड़ियां कहां जायेंगी ? उत्तर मिला कानपुर। लेकिन इस प्रश्न पर कि इनमें क्या है, सन्नाटा छा गया। दारोगा साहब का संदेह और भी बढ़ा। कुछ देर तक उत्तर की बाट देखकर वह ज़ोर से बोले, क्या तुम सब गूंगे हो गये हो ? हम पूछते हैं, इसमें क्या लदा है ?

जब एक बार भी कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने घोड़े को एक गाड़ी से मिलाकर बोरे को टटोला। भ्रम दूर हो गया। यह नमक के ढेले थे।

3

पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ सोते कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ीवानों ने घबराए हुए आकर जगाया और बोले—महाराज ! दारोगा ने गाड़ियां रोक दी हैं और घाट पर खड़े आपको बुलाते हैं।

पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मी जी पर अखंड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने

हैं, इन्हें वह जैसे चाहती है नचाती है। लेटे-ही-लेटे गर्व से बोले, चलो हम आते हैं। यह कहकर पंडित जी ने बड़ी निश्चितता से पान के बीड़े लगाकर खाये। फिर लिहाफ ओढ़े हुए दारोगा के पास आकर बोले, बाबू जी आशीर्वाद ! कहिए, हमसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ कि गाड़ियां रोक दी गयीं। हम ब्राह्मणों पर तो आपकी कृपा-दृष्टि रहनी चाहिए।

वंशीधर रुखाई से बोले, सरकारी हुक्म !

पंडित अलोपीदीन ने हंसकर कहा, हम सरकारी हुक्म को नहीं जानते और न सरकार को। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आपका तो घर का मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं ? आपने व्यर्थ का कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधर से जायें और इस घाट के देवता को भेंट न चढ़ावें। मैं तो आपकी सेवा में स्वयं ही आ रहा था। वंशीधर पर ऐश्वर्य की मोहिनी वंशी का कुछ प्रभाव न पड़ा। ईमानदारी की नयी उमंग थी। कड़ककर बोले, हम उन नमकहरामों में नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप इस समय हिरासत में हैं। आपका कायदे के अनुसार चालान होगा। बस, मुझे अधिक बातों की फुर्सत नहीं है। जमादार बदलूसिंह ! तुम इन्हें हिरासत में ले चलो, मैं हुक्म देता हूं।

पं० अलोपीदीन स्तंभित हो गये। गाड़ीवानों में हलचल मच गयी। पंडित जी के जीवन में कदाचित यह पहला ही अवसर था कि पंडित को ऐसी कठिन बातें सुननी पड़ीं। बदलूसिंह आगे बढ़ा, किंतु रोब के मारे यह साहस न हुआ

कि उनका हाथ पकड़ सके। पंडित जी ने धर्म को धन का ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया कि यह अभी उद्दंड लड़का है। माया-मोह के जाल में अभी नहीं पड़ा। अल्हड़ है, झिझकता है। बहुत दीन-भाव से बोले, बाबू साहब, ऐसा न कीजिए, हम मिट जायेंगे। इज्ज़त धूल में मिल जायेगी। हमारा अपमान करने से आपके हाथ क्या आयेगा। हम किसी तरह आपसे बाहर थोड़े ही हैं!

वंशीधर ने कठोर स्वर में कहा, हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते।

अलोपीदीन ने जिस सहारे को चट्टान समझ रखा था वह पैरों के नीचे खिसकता हुआ मालूम हुआ। स्वाभिमान और धन ऐश्वर्य को कड़ी चोट लगी। किंतु अभी तक धन की सांख्यिक शक्ति का पूरा भरोसा था। अपने मुख्तार से बोले, लाला जी, एक हज़ार के नोट बाबू साहब की भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।

वंशीधर ने गरम होकर कहा, एक हज़ार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से नहीं हटा सकते।

धर्म की इस बुद्धिहोन दृढ़ता और देव-दुर्लभ त्याग पर मन बहुत झुंझलाया। अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा। धन ने उछल-उछलकर आक्रमण करने शुरू किये। एक से पांच, पांच से दस, दस से पंद्रह और पंद्रह से बीस हज़ार तक नौबत पहुंची, किंतु धर्म अलौकिक वीरता के साथ इस बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की भांति अटल, अविचलित खड़ा था।

अलोपीदीन निराश होकर बोले, अब इससे अधिक मेरा

साहस नहीं। आगे आपको अधिकार है।

वंशीधर ने अपने जमादार को ललकारा। बदलूसिंह मन में दारोगा जी को गालियां देता हुआ पंडित अलोपीदीन की ओर बढ़ा। पंडित जी घबड़ाकर दो-तीन कदम पीछे हट गये। अत्यंत दीनता से बोले, बाबू साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए, मैं पच्चीस हज़ार पर निपटारा करने को तैयार हूं।

"असंभव बात है।"

"तीस हज़ार पर।"

"किसी तरह भी संभव नहीं।"

"क्या चालीस हज़ार पर भी नहीं ?"

"चालीस हज़ार नहीं, चालीस लाख पर भी असंभव है। बदलूसिंह, इस आदमी को अभी हिरासत में ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।"

धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला। अलोपीदीन ने एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य को हथकड़ियां लिए हुए अपनी तरफ आते देखा। चारों ओर निराश और कातर दृष्टि से देखने लगे। इसके बाद मूर्छित होकर गिर पड़े।

4

दुनिया सोती थी पर दुनिया की जीभ जागती थी। सबेरे देखिए तो बालक-वृद्ध सबके मुंह से यही बात सुनायी देती थी। जिसे देखिए वही पंडित जी के इस व्यवहार पर टीका-टिप्पणी कर रहा था, निंदा की बौछारें हो रही थीं, मानो

संसार से अब पापी का पाप कट गया। पानी को दूध के नाम से बेचनेवाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरनेवाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफ़र करनेवाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनानेवाले सेठ और साहूकार यह सब-के-सब देवताओं की भांति गर्दनें चला रहे थे। दूसरे दिन पंडित अलोपीदीन अभियुक्त कांस्टेबलों के साथ, हाथों में हथकड़ियां, हृदय में ग्लानि और क्षोभ भरे, लज्जा से गर्दन झुकाए अदालत की तरफ चले तो सारे शहर में हलचल मच गयी। मेलों में कदाचित् आंखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़ के मारे छत और दीवार में कोई भेद न रहा।

किंतु अदालत में पहुंचने की देर थी। पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त अमले उनके सेवक, वकील-मुख्तार उनके आज्ञा पालक और अरदली, चपरासी तथा चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम थे। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आये। ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य साधन करने-वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आये। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गयी। न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उसके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे, किंतु लोभ से डांवाडोल।

यहां तक कि मुंशी जी को न्याय भी अपनी ओर से कुछ खिचा हुआ दीख पड़ता था। वह न्याय का दरबार था, परंतु उसके कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था। किंतु पक्षपात और न्याय का क्या मेल ? जहाँ पक्षपात हो, वहां न्याय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुकदमा शीघ्र ही समाप्त हो गया। डिप्टी मजिस्ट्रेट ने अपनी तजवीज में लिखा, पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिये गये प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं। वह एक बड़े भारी आदमी हैं। यह बात कल्पना के बाहर है कि उन्होंने थोड़े लाभ के लिए ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर का अधिक दोष नहीं, लेकिन यह बड़े खेद की बात है कि उसकी उद्दंडता और विचार-हीनता के कारण एक भलेमानुस को कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काम से सजग और सचेत रहता है, किंतु नमक के मुकद्दमे की बढ़ी हुई नमकहलाली ने उसके विवेक और बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। भविष्य में उसे होशियार रहना चाहिए।

वकीलों ने यह फैसला सुना और उछल पड़े। पंडित अलोपीदीन मुस्कराते हुए बाहर निकले। स्वजन बांधवों ने रुपयों की लूट की। उदारता का सागर उमड़ पड़ा। उसकी लहरों ने अदालत की नींव तक हिला दी। जब वंशीधर बाहर निकले तो चारों ओर से उनके ऊपर व्यंगवाणों की वर्षा होने लगी। चपरासियों ने झुक-झुककर सलाम किये। किंतु इस समय एक-एक कटुवाक्य, एक-एक संकेत उनकी गर्वाग्नि को प्रज्जवलित कर रहा था। कदाचित् इस मुकद्दमे

में सफल होकर वह इस तरह अकड़ते हुए न चलते । आज उन्हें संसार का एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ । न्याय और विद्वत्ता, लंबी-चौड़ी उपाधियां, बड़ी-बड़ी दाढ़ियां और ढीले चोंगे एक भी सच्चे आदर के पात्र नहीं हैं ।

वंशीधर ने धन से बैर मोल लिया था, उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य था । कठिनता से एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली का परवाना आ पहुंचा । कार्य-परायणता का दंड मिला । बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेद से व्यथित घर को चले । बूढ़े मुंशी जी तो पहले ही से कुड़-बुड़ा रहे थे कि चलते-चलते इस लड़के को समझाया था, लेकिन इसने एक न सुनी । सब मनमानी करता है । हम तो कलवार और कसाई के तगादे सहें, बुढ़ापे में भगत बनकर बैठें और वहां बस वही सूखी तनख्वाह ! हमने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन काम किया, दिल खोलकर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं । घर में चाहे अंधेरा हो, मसजिद में अवश्य दिया जलाएंगे । खेद ऐसी समझ पर ! पढ़ना-लिखना सब अकारथ गया । इसके थोड़े ही दिनों बाद, जब मुंशी वंशीधर इस दुरावस्था में घर पहुंचे और बूढ़े पिता जी ने समाचार सुना तो सिर पीट लिया । बोले, जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूं । बहुत देर तक पछता-पछताकर हाथ मलते रहे । क्रोध में कुछ कठोर बातें भी कहीं और यदि वंशीधर वहां से टल न जाते तो अवश्य ही यह क्रोध विकट रूप धारण करता । वृद्धा माता को भी दुःख हुआ । जगन्नाथ और रामेश्वर यात्रा की कामनाएं मिट्टी में मिल गईं । पत्नी ने तो कई दिन तक सीधे

मुंह से बात भी नहीं की ।

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया । संध्या का समय था । बूढ़े मुंशी जी बैठे राम-नाम की माला जप रहे थे। इसी समय उनके द्वार पर सजा हुआ रथ आकर रुका। हरे और गुलाबी परदे, पछहियें बैलों की जोड़ी, उनकी गर्दनों में नीले धागे, सींगें पीतल से जड़ी हुईं । कई नौकर लाठियां कंधों पर रखे साथ थे । मुंशी जी अगवानी को दौड़े । देखा तो पंडित अलोपीदीन हैं । झुककर दंडवत की और लल्लो चप्पो की बातें करने लगे, हमारा भाग्य उदय हुआ, जो आपके चरण इस द्वार पर आए । आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन-सा मुंह दिखावें, मुंह में तो कालिख लगी हुई है । किंतु क्या करें, लड़का अभागा कपूत है, नहीं तो आपसे क्यों मुंह छिपाना पड़ता ? ईश्वर निस्संतान चाहे रक्खे पर ऐसी संतान न दे ।

अलोपीदीन ने कहा—नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिए ।

मुंशी जी ने चकित होकर कहा—ऐसी संतान को और क्या कहूं ।

अलोपीदीन ने वात्सल्यपूर्ण स्वर में कहा—कुलतिलक और पुरखों की कीर्ति उज्जवल करनेवाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्म पर अपना सबकुछ अर्पण कर सकें ?

पंडित अलोपीदीन ने वंशीधर से कहा—दारोगा जी, इसे खुशामद न समझिए, खुशामद करने के लिए मुझे इतना कष्ट उठाने की ज़रूरत न थी । उस रात को आपने अपने अधिकार-बल से मुझे अपनी हिरासत में ले लिया था, किंतु

आज मैं स्वेच्छा से आपकी हिरासत में आया हूं। मैंने हज़ारों रईस और अमीर देखे, हज़ारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा किंतु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धन का गुलाम बनाकर छोड़ दिया। मुझे आज्ञा दीजिये कि आपसे कुछ विनय करूं।

वंशीधर ने अलोपीदीन को आते देखा तो उठकर सत्कार किया; किंतु स्वाभिमान सहित। समझ गए कि यह महाशय मुझे लज्जित करने और जलाने आए हैं। क्षमा प्रार्थना की चेष्टा नहीं की; वरन् उन्हें अपने पिता की यह ठकुर-सुहाती की बात असह्य-सी प्रतीत हुई। पर पंडित जी की बातें सुनीं तो मन की मैल मिट गई। पंडित जी की ओर उड़ती हुई दृष्टि से देखा। सद्भाव झलक रहा था। गर्व ने अब लज्जा के सामने सिर झुका दिया। शरमाते हुए बोले —यह आपकी उदारता है जो ऐसा कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिए। मैं धर्म की बेड़ी में जकड़ा हुआ था, नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूं। जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर-माथे पर।

अलोपीदीन ने विनीत भाव से कहा—नदी तट पर आपने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार की थी, किंतु आज स्वीकार करनी पड़ेगी।

वंशीधर बोले—मैं किस योग्य हूं, किंतु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है उसमें त्रुटि न होगी।

अलोपीदीन ने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधर के सामने रखकर बोले—इस पद को स्वीकार कीजिए और अपने हस्ताक्षर कर दीजिए। मैं ब्राह्मण हूं,

जब तक यह सवाल पूरा न कीजिएगा, द्वार से न हटूंगा ।

मुंशी वंशीधर ने उस काग़ज़ को पढ़ा तो कृतज्ञता से आंखों में आंसू भर आए । पंडित अलोपीदीन ने उनको अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियत किया था । छह हज़ार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़ा, रहने को बंगला, नौकर-चाकर मुफ्त । कंपित स्वर में बोले—पंडित जी, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी उदारता की प्रशंसा कर सकूं ! किंतु ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूं ।

अलोपीदीन हंसकर बोले—मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य की ही ज़रूरत है ।

वंशीधर ने गंभीर भाव से कहा—यों मैं आपका दास हूं । आप-जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुष की सेवा करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है । किंतु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह स्वभाव जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है । ऐसे महान् कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्य की ज़रूरत है ।

अलोपीदीन ने कलमदान से कलम निकाली और उसे वंशीधर के हाथ में देकर बोले, न मुझे विद्वत्ता की चाह है न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्य-कुशलता की । इन गुणों के महत्त्व का परिचय खूब पा चुका हूं । अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वत्ता की चमक फीकी पड़ जाती है । यह कलम लीजिए, अधिक सोच-विचार न कीजिए, दस्तखत कर दीजिए । परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको

सदैव वही नदी के किनारेवाला, बेमुरौवत्त, उदंड, कठोर परंतु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाए रखे !

वंशीधर की आंखें डबडबा आईं। हृदय के संकुचित पात्र में इतना एहसान न समा सका। एक बार फिर पंडित जी की ओर भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखा और कांपते हुए हाथ से मैनेजरी के काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दिए।

अलोपीदीन ने प्रफुल्लित होकर उन्हें गले लगा लिया।

मुद्रक : रुचिका प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 9812